संस्कृत - सूक्ति - संग्रहः

सम्पादक :

डॉ० सत्यव्रतसिंहः

'संस्कृतज्ञानवर्द्धिनीसभा'-ग्रन्थमाला सं० १

प्रकाशकसंस्था

अखिल भारतीय संस्कृत - परिषद्,

लखनऊनगरम्

मुद्रक:
स्टार प्रेस, लखनऊ
फोन : २४७६८

द्वितीयसंशोधितसंस्करणम्

मूल्यम् २)

विषयानुक्रमणी

(चतुर्थे खण्डे रसभावात्मके)

भूमिका के रूप मे

'संस्कृत-सूक्ति-संग्रह' नाम का यह (द्वितीय संशोधित) संकलन विश्वविद्यालय के विद्यार्थिओं के 'अनिवार्य सामान्य संस्कृत' के पाठ्य-ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत किया जा रहा है। इस संकलन में संस्कृत के पद्य और गद्य दोनो का स्थान है। संस्कृत के कवि भिन्न-भिन्न प्रकार के चरितों के चित्रण, भिन्न-भिन्न प्रकार के लोक-जीवन के आदर्शों के निरूपण, भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोभावों के प्रकाशन—एक शब्द में, जीवन के सभी क्षेत्रों और विषयों पर बहुत कुछ लिख चुके हैं। यह सब भारत की सभ्यता और संस्कृति की प्राचीन निधि है। इस निधि का उपयोग भारत की आज तक प्रचलित सभी स्थानीय और प्रान्तीय भाषायें करती आ रही हैं। युग पलटते रहेंगे किन्तु जब तक यह निधि सुरक्षित है तब तक ऐसा संभव नहीं कि भारत का प्राचीन ऐतिहासिक अस्तित्व नष्ट हो जाय। संस्कृत भाषा एक ऐसी ज्योति है जो अब तक नष्ट नहीं हुई, समय के उलट-फेर में कुछ क्षीण भले ही हो गयी हो। इस ज्योति के लुप्त हो जाने पर भारतीय जीवन की २००० वर्षो की ऐतिहासिक कड़ियाँ ढूँढने में नहीं मिलेंगी। आज संस्कृत के पढ़ने-पढ़ाने की जो आवश्यकतायें हैं उनमें सबसे पहली आवश्यकता 'भारत की सांस्कृतिक निधि की रक्षा' है। यह 'सांस्कृतिक निधि की रक्षा' आधुनिक भारतीय साहित्य की रचना के लिये अत्यावश्यक है। आज से २०-२२ शताब्दियों पहले 'व्याकरण' के पढ़ने-पढ़ाने की आवश्यकता की समस्या इस देश में उठ खड़ी हुई थी और इसका समाधान यह बताया गया था कि यदि 'व्याकरण' न पढ़ा-पढ़ाया गया तो 'वेद-वाङ्मय' नष्ट हो जायेगा। आज यही समस्या 'संस्कृत के पढ़ने-पढ़ाने की आवश्यकता' के रूप में उठ खड़ी हुई है और इसका समाधान 'भारतीय जीवन की प्राचीन कड़िओं की रक्षा' बताया जा रहा है। आज भारत में संस्कृत की रक्षा का महत्व

'आत्मरक्षा' का महत्व है और 'आत्मरक्षा' सब से बड़ा कर्त्तव्य है, इसे 'परमो धर्मः' मानना चाहिये।

आज भारत के सभी स्तरों के शिक्षणालयों में संस्कृत का कुछ न कुछ स्थान और महत्त्व दिखाई दे रहा है। भीतरी और बाहरी परिस्थितियो ने हमें 'आत्मरक्षा' के लिये उत्साहित और उत्तेजित कर रखा है। जब तक हम अपने आपको बचावेंगे नहीं तब तक आगे बढ़ेगे नहीं। 'अनिवार्य सामान्य संस्कृत' इसी उद्देश्य से इस प्रान्त के पूर्व और उत्तर माध्यमिक विद्यालयों तथा विश्वविद्यालय की प्रारम्भिक कला-कक्षाओं में एक पाठ्य-विषय के रूप में निर्धारित है। अभी तो यह बीज रूप में ही है। यदि यह बीज सुरक्षित रहा तो इसके अङ्कुर अवश्य निकलेंगे और इसके फूल और फल हमारे आधुनिक जीवन और हमारे आधुनिक साहित्य की भारतीयता के रूप में स्वयं प्रकट होंगे।

यह 'संकलन' संस्कृत-विभाग के अध्यापकगण ने किया है जिसे संस्कृत-विभाग की 'ज्ञानवर्धिनी सभा' की ओर से अखिल भारतीय संस्कृत-परिषद्, लखनऊ, ने प्रकाशित किया है। इस 'संकलन' में संस्कृत के उन-उन कवियों की सरल और सुमधुर रचनायें संगृहीत हैं जिनके नाम से भारत के प्राचीन सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास के कई एक अध्याय बनते हैं और जिनके द्वारा निर्दिष्ट दिशाओं में चलकर आज का किसी भी भारतीय भाषा का कवि 'साहित्य का स्रष्टा' बन सकता है। आइये, आप भी इसे पढ़िये और 'अनिवार्य सामान्य संस्कृत' के पाठ्य रूप में पढ़िये। यदि आप कवि नहीं तो आपको इसमें कविता का आनन्द मिलेगा। यदि आप कवि बनना चाहते हैं तो इससे काफी प्रेरणा मिलेगी। विशेष नहीं तो इतना तो अवश्य होगा कि आप भारत के ऐतिहासिक अस्तित्व की रक्षा में सक्रिय सहयोग दे सकेंगे।

निवेदनम्

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।

(यजुर्वेद)

प्रथमे खण्डे

नरतुन्र्गानात्मके

१ ऋतु-गोष्ठी

क—ग्रीष्मः

ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त—ये ६ ऋतुयें हैं जिन पर संस्कृत के बड़े और छोटे—सभी कवियों ने रचनायें की हैं। संस्कृत की ऋतु-कविता किसी भी भाषा की ऋतु-कविता के आगे रक्खी जा सकती है। संस्कृत के कवियों ने, अपनी-अपनी ऋतु-कविता में, उन सब विषयों का वर्णन किया है जिन्हें हम पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, जल-स्थल और मनुष्य पर ऋतुओं के प्रभाव के रूप में देखा करते हैं।

इस ऋतु-गोष्ठी में सबसे पहला स्थान (क) 'ग्रीष्म ऋतु' का है। ग्रीष्म मे 'सूर्य के प्रताप' पर १ला श्लोक देखिये जिसमें कवि सूर्य को एक भयंकर फोड़ा बता रहा है जिसके पक जाने से धरती और पानी, पेड़-पौधे और पहाड़ तथा धरती के निवासी—एक शब्द में यह सारा लोक मूर्च्छित हो रहा है। २रे और ३रे श्लोक मे गरमी की 'लू' का वर्णन सुनिये। ४थे श्लोक में महाकवि कालिदास ने 'ग्रीष्म ऋतु के सायंकाल' का दृश्य दिखाया है।

अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
यक्ष्मार्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात्
विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः पर्वता
लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥ १ ॥

(भासः अविमारक ४. ४)

लिम्पन्ति रूक्षपवनाः सिकताग्निचूर्णैः
संस्वेदयन्ति च नगाः परुषैः पलाशैः।
दावैर्द्रवीकृततनुः स्रवतीव भास्वान्
आदित्यपाकचलितः फलतीव लोकः ॥२॥

(भासः अविमारक ४. ५)

अङ्गारैर्खचितेव भूर्वियदपि ज्वालाकरालं करै-
स्तिग्मांशोः किरतीव तीव्रमभितो वायुः कुकूलानलम्।
अप्यंभांसि नखंपचानि सरितामाशा ज्वलन्तीव च
ग्रीष्मेऽस्मिन्नववह्निदीपितमिवाशेषं जगद् वर्तते ॥ ३ ॥

(श्री भोजदेव—शाङ्गंधरपद्धति, श्लोक सं० ३८२७)

सुभगसलिलावगाहाः
पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा
दिवसाः परिणामरमणीयाः ॥४॥

(कालिदासः अभिज्ञानशाकुन्तलम् ३. १)

ख—वर्षा

'वर्षा' पर यह कविता, यहाँ वाल्मीकि-रामायण से उद्धृत की गई है। राम माल्यवान् पर्वत पर हैं और लक्ष्मण से 'बरसात' की शोभा के सम्बन्ध में कह रहे हैं।

(वसन् माल्यवतः पृष्ठे
रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।)
अयं स कालः संप्राप्तः
समयोऽद्य जलागमः ।
सम्पश्य त्वं नभो मेघैः
संवृतं गिरिसंनिभैः ॥ १ ॥

मन्दमारुतनिश्वासं
सन्ध्याचन्दनरञ्जितम् ।
आपाण्डुजलदं भाति
कामातुरमिवाम्बरम् ॥ २ ॥

एषा घर्मपरिक्लिष्टा
नववारिपरिप्लुप्ता ।
सीतेव शोकसंतप्ता
मही वाष्पं विमुञ्चति ॥३॥

मेघकृष्णाजिनधरा
धारायज्ञोपवीतिनः ।
मारुतापूरितगुहाः
प्राधीता इव पर्वताः ॥ ४ ॥

क्वचित् प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति ।
क्वचित् क्वचित् पर्वतसंनिरुद्धं
रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य ॥५॥

तडित्पताकाभिरलङ्कृताना—
मुदीर्णगम्भीरमहारवाणाम् ।
विभान्ति रूपाणि वलाहकानां
रणोत्सुकानामिव वारणानाम् ॥६॥

नीलेषु नीला नववारिपूर्णा
मेघेषु मेघाः प्रतिभान्ति सक्ताः ।
दावाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः
शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः ॥७॥

घनोपगूढं गगनं न तारा
न भास्करो दर्शनमभ्युपैति ।
नवैर्जलौघैर्धरिणी विसृप्ता
तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः ॥८॥

महान्ति कूटानि महीधराणां
धाराविधौ तान्यधिकं विभान्ति ।
महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रयातै-
र्मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः ॥ ९ ॥

(श्रीमद्वाल्मीकिरामायणकिष्किन्धाकाण्डः अष्टाविंशसर्गात्)

ग—शरत्काल:

'शरत्काल' की शोभा पर संस्कृत के कवियों ने बहुत कुछ लिखा है। यह रचना आदि कवि वाल्मीकि की रामायण से उद्धृत है। इसमें शरद् ऋतु के सौन्दर्य का साम्राज्य वर्णित है।

शाखासु सप्तच्छदपादपानां
प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम्।
लीलासु चैवोत्तमवारणानां
श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥१॥

मदप्रगल्भेषु च वारणेषु
गवां समूहेषु च दर्पितेषु।
प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु
विभाति लक्ष्मीर्बहुधा विभक्ता ॥ २ ॥

व्यक्तं नभः शस्त्रविधौतवर्णं
कृशप्रवाहानि नदीजलानि।
कह्लारशीताः पवनाः प्रवान्ति
तमोवियुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः ॥३॥

रात्रिः शशाङ्कोदितसौम्यवक्त्रा
तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति
नारीव शुक्लांशुकसंवृताङ्गी ॥४॥

जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं
क्रौञ्चस्वनं शालिवनं विपक्वम्।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः
शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम् ॥ ५ ॥

(श्रीमद्वाल्मीकिरामायणकिष्किन्धाकाण्ड-त्रिंशसर्गात्)

घ—हेमन्तः

वाल्मीकि-रामायण से लिये गये हैं। इनमें 'हेमन्त' का बड़ा सु
न है। ओस और पाले, ठंढ, पानी, लुभाने वाली आग तथा
इस ऋतु पर रामायण के कवि ने जैसा लिखा है वैसा, इतने
किसी कवि ने नहीं लिखा।

अय स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद ।
अलङ्कृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥१॥

नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी ।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥ २ ।

प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम् ।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरि ।

अत्यन्तसुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः ।
दिवसा सुभगादित्यश्छायासलिलदुर्भगाः ॥ ४ ।

निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः ।
शीतवृद्धतरायामस्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम् ॥५।

ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते ।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते ॥ ६ ।

प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च सांप्रतम् ।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः ॥७।

खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः ।
शोभन्ते किञ्चिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः॥८।

अवश्यायनिपातेन किंचित् प्रक्लिन्नशाद्वला ।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥९।

एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः ।
नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम् ॥१०।

जराजजरितै पत्रैं शीर्णकेसरकर्णिकैं ।
नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः ॥११॥

(वाल्मीकिरामायण-अरण्यकाण्ड-षोडशसर्गतः)

ङ—शिशिरसमयः

हेमन्त के बाद शिशिर ऋतु आती है। शीत की इस ऋतु पर यहाँ तीन श्लोक त हैं। १ ले श्लोक में कुहरे की चादर ओढ़े जलमण्डल का दृश्य देखिये। २ रे श्लोक युमण्डल पर ठंड का प्रभाव दिखाया गया है और यह कल्पना कितनी अच्छी है कि ऋतु के छोटे दिन 'ठंड के डर से सिकुड़े दिन' हैं। ३ रा श्लोक ठंड के मारे व्याकुल गाय-बैल, भेड़-बकरी, कुत्ते और ग़रीब लोगों की दुर्दशा का दृश्य प्रस्तुत करता है।

अंशुकमिव शीतभयात् संस्त्यानत्वच्छलेन हिमधवलम् ।
अम्भोभिरपि गृहीतं पश्यत शिशिरस्य माहात्म्यम् ॥१॥

(अमृतवर्धनस्य-शार्ङ्गधरपद्धतिः श्लोक सं० ३९३५)

वह्नेः शक्तिर्जलमभिगता दर्शनाद्दाहवृत्तेः
नित्योद्गन्धे नवमरुवके वर्तते पुष्पकार्यम् ।
शीतत्रासं दधदिव रविर्याति सिन्धोः कृशानुं
शीतैर्भीता इव च दिवसा सांप्रतं संकुचन्ति ॥२॥

(राजशेखरस्य—शार्ङ्गधरपद्धतिः श्लोक सं० ३९३६)

कम्पन्ते कपयो भृशं जडकृशं गोऽजाविकं ग्लायति
श्वा चुल्लीकुहरोदरं क्षणमपि क्षिप्तोऽपि नैवोज्झति ।
शीतार्तिव्यसनातुरः पुनरयं दीनो जनः कूर्मवत्
स्वान्यङ्गानि शरीर एव हि निजे निह्नोतुमाकांक्षति ॥३॥

(सुभाषितरत्नकोष–पृष्ठ ५८)

च—वसन्तः

वसन्त ऋतु प्रकृति के आनन्द की ऋतु है । इस ऋतु पर संस्कृत के सभी कवियों ने लिखा है । नीचे उद्धृत श्लोक 'वाल्मीकि-रामायण' के हैं । राम लक्ष्मण से वसन्त की शोभा का वर्णन करते कह रहे हैं ।

सुखानिलोऽयं सौमित्रे
काल: प्रचुरमन्मथः ।
गन्धवान् सुरभिर्मासो
जातपुष्पफलद्रुमः ॥१॥

पश्य रूपाणि सौमित्रे
वनान्तं पुष्पशालिनाम् ।
सृजतां पुष्पवर्षाणि
वर्षं तोयमुचामिव ॥२॥

प्रस्तरेषु च रम्येषु
विविधाः काननद्रुमाः ।
वायुवेगप्रचलिताः
पुष्पैरवकिरन्ति गाम् ॥३॥

पतितैः पतमानैश्च
पादपस्थैश्च मारुतः ।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे
क्रीडतीव समन्ततः ॥४॥

विक्षिपन् विविधाः शाखा
नगानां कुसुमोत्कटाः ।
मारुतश्चलितस्थानैः
षट्पदैरनुगम्यते ॥५॥

मत्तकोकिलसन्नादै-
नर्तयन्निव पादपान् ।
शैलकन्दरनिष्क्रान्तः
प्रगीत इव चानिलः ॥६॥

अमी पवनविक्षिप्ता
विनदन्तीव पादपाः ।
षट्पदैरनुकूजद्भि—
र्वनेषु मधुगन्धिषु ॥७॥

पुष्पसंछन्नशिखरा
मारुतोत्क्षेपचञ्चलाः ।
अमी मधुकरोत्तंसाः
प्रगीता इव पादपाः ॥८॥

सुपुष्पितांस्तु पश्यैतान्
कर्णिकारान् समन्ततः ।
हाटकप्रतिसंछन्नान्
नरान् पीताम्बरानिव ॥९॥

अयं वसन्तः सौमित्रे
नानाविहगनादितः ।
सीतया विप्रहीणस्य
शोकसंदीपनो मम ॥१०॥

(श्रीमद्वाल्मीकिरामायणः किष्किन्धाकाण्ड–प्रथमसर्गतः)

२—सूर्योदयः

संस्कृत काव्य-साहित्य में जितने भी प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन है उनमें 'सूर्योदय' के दृश्य का एक विशेष महत्व है। यहाँ उद्धृत १ ले श्लोक में, महाकवि कालिदास ने, चन्द्रमा के अस्त और सूर्य के उदय के दृश्य-वर्णन मे, यह दिखाया है कि संसार के लोगो को, दुःख और सुख में शान्तचित्त रहना चाहिए। माघ-रचित २रे श्लोक में उदित होते सूर्य की कल्पना 'सोने के घड़े' से और उसकी किरणों की कल्पना 'लम्बी रस्सी' से की गई है और यह दिखाया गया है कि चारों दिशायें किस प्रकार किरणों की रस्सियों में इस सोने के घड़े को बांधकर ऊपर उठा रही हैं। ३ रा श्लोक नये-नये निकले सूरज को एक सुन्दर बालक के रूप में चित्रित करता है और यह दिखाता है कि किस प्रकार यह बालक आकाश की गोद में पहुँचना चाहता है और ४ था चन्द्रमा के अस्त और सूर्य के उदय होने के दृश्य में मानव-जीवन के एक रहस्य पर प्रकाश डालता है।

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना—
माविष्कृतारुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ॥१॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलं: चतुर्थसर्गतः श्लोक सं० १)

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि—
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ॥२॥

उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेव रिङ्गन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः ॥३॥

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां हि विचित्रो विपाकः ॥४॥

(शिशुपालवध-११ शलमसर्गतः)

३—सूर्यास्तमयः

संस्कृत-कवियों ने 'सूर्यास्त' के दृश्य पर बहुत कुछ लिखा है। यहाँ उद्धृत १ ले श्लोक में, सूर्यास्त का सहज स्वाभाविक वर्णन हैं। २ रे श्लोक में सूर्यास्त के समय, आकाश के दृश्य की कल्पना 'अर्धनारीश्वर' (पार्वती के संग शिव) से की गई है। ३ रा श्लोक अस्त होते हुये सूर्य—बिम्ब का एक चित्र उपस्थित करता है।

खगा वासोपेता सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१॥

(भासः स्वप्नवासवदत्तम् १. १६)

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
संध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥२॥

(भासः अविमारक २. १२)

व्यामृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो
नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।
संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥३॥

(भासः अविमारक २. १३)

अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः
सन्ध्यानुरञ्जितवपुः प्रतिभाति सूर्यः।
रक्तोज्जवलांशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचितः पुलको यथैव ॥४॥

(भासः अभिषेक ५. २३)

४—चन्द्रोदयः

'चन्द्रोदय' के दृश्य पर संस्कृत काव्य-साहित्य के सैकड़ों पृष्ठ लिखे गये हैं। १ ला श्लोक उदय होते चन्द्रमा की दूध सी चांदनी का दृश्य दिखाता है। २ रे श्लोक में गङ्गा की धारा के रूप में चांदनी का चित्र खिंचा है। ३ रे श्लोक में दिग्-दिगन्त पर चन्द्रोदय का प्रभाव वर्णित है। ४ था श्लोक पेड़ों की छाँह में चांदनी की शोभा का वर्णन करता है।

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा
हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति ॥१॥
(भासः चारुदत्तः १. २९)

नीलनीरजनिभे हिमगौरं
शैलरुद्धवपुषः सितरश्मेः।
खे रराज निपतत्करजालं
वारिधेः पयसि गाङ्गमिवाम्भः ॥२॥
अन्तिकान्तिकगतेन्दुविसृष्टे
जिह्मतां जहाति दीधितिजाले।
निःसृतस्तिमिरभारनिरोधा—
दुच्छ्वसन्निव रराज दिगन्तः ॥३॥
शारतां गमितया शशिपादै-
श्छायया विटपिनां प्रतिपेदे।
न्यस्तशुक्लवलिचित्रतलाभि-
स्तुल्यता वसति वेश्ममहीभिः ॥४॥
(भारविः किरातार्जुनीय ९ म सर्गतः)

५–हिमालयो नाम नगाधिराजः

हिमालय' पर लिखी महाकवि कालिदास की यह कविता अभी भी पुरानी नह
हिमालय का आँखों देखा दृश्य बड़ा सुन्दर होता है किन्तु इस कविता में वर्णित
कम सुन्दर नहीं । यहाँ हिमालय की ऊंचाई और लम्बाई, बर्फ़ का गिरन
कर बादलों का घिरना, बादलों से ऊपर निकली चोटियाँ, साल के वन, सघ
गहराइयाँ, भागीरथी के प्रपात और देवदारु के जंगल–सब कुछ एक के बा
ल चित्रपट से झलकते हैं ।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥१॥
अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥२॥
यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां संपादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति ।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसंध्यामिव धातुमत्ताम् ॥३
आमेखलं संचरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजितवृष्टिभिराश्रयन्ते श्रृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥४॥
कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरीभकरोति ॥५॥
दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम् ।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ॥६॥
भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥७॥

(कालिदासः कुमारसंभव—१ म सर्ग

द्वितीये खण्डे

चरितचित्रणात्मके

१–पुरुषोत्तमो रामः

तरण वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड से उद्धृत है । प
प में राम का चरित्र बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है ।

तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः ।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः ॥१॥
स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते ।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥२॥
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥३॥
शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः ।
कथयन्नास्ति वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि ॥४॥
बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः ।
वीर्यवान्तत्र वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥५॥
नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः ।
उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा ॥६॥
अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान् देशकालवित् ।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः ॥७॥
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
लौकिके समयाचारे कृतकालो विशारदः ॥८॥
शास्त्रज्ञश्च कृतज्ञश्च पुरुषान्तरकोविदः ।
यः प्रग्रहानुग्रहयोर्यथान्यायं विचक्षणः ॥९॥
सम्मतस्त्रिषु लोकेषु वसुधायाः क्षमागुणैः ।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्येणापि ~~शचीपतेः~~ ॥१०॥
तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैः पितुः ।
गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः ॥११

(श्रीमद्वाल्मीकिरामायण-अयोध्याकाण्ड–प्रथ

२—सीता राममनुव्रता

यह अवतरण वाल्मीकि-रामायण से उद्धृत है। इन पंक्तियों में सीता का चरित बड़ी सुन्दरता से चित्रित है। यहाँ सीता ने रावण की भर्त्सना की है। कवि ने, सीता के चित्रण में, भारतीय नारी के एक आदर्श का चित्रण किया है।

रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा
प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥१॥

महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम्।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥२॥

सर्वलक्षणसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम्।
सत्यसंधं महाभागमहं राममनुव्रता ॥३॥

महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम्।
नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥४॥

पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम्।
पृथुकीर्तिं महाबाहुमहं राममनुव्रता ॥५॥

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥६॥

पादपान् काञ्चनान्नूनं बहून् पश्यसि मन्दभाक्।
राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि राक्षस ॥७॥

क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः।
आशीविषस्य वदनाद् दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥८॥

मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि ॥९॥

अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेढि च क्षुरम्।
राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥१०॥

अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि।
सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ॥११॥

यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि ।
अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥१२॥
कल्याणवृत्तां रामस्य यो भार्यां हर्तुमिच्छसि ।
अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ॥१३॥
यदन्तरं सिंहश्रृगालयोर्वने, यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः ।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं, तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥१४॥
यदन्तरं वायसवैनतेययोर्यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि ।
यदन्तरं हंसकगृध्रयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥१५॥
तस्मिन् सहास्राक्षसमप्रभावे, रामे स्थिते कार्मुकवाणपाणौ ।
हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये, आज्यं यथा मक्षिकयावगीर्णम् ॥१६॥
(श्रीमद्वाल्मीकिरामायण-अरण्यकाण्ड—४७ तमसर्गतः)

३—भगवान् कृष्णः

यह अवतरण 'महाभारत' से लिया गया है। इसमें एक महान् शूरवीर के रूप में कृष्ण का चित्रण है।

स बाहुभ्यां सागरमुत्तितिर्षे—
न्महोदधिं सलिलस्याप्रमेयम्।
तेजस्विनं कृष्णमत्यन्तशूरं
युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ॥१॥

अग्निं समिद्धं शमयेद् भुजाभ्यां
चन्द्रं च सूर्यं च निवारयेत्।
हरेद् देवानाममृतं प्रसह्य
युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ॥२॥

यो रुक्मिणीमेकरथेन भोजा—
नुत्साद्य राज्ञः समरे प्रसह्य।
उवाह भार्यां यशसा ज्वलन्तीं
यस्यां जज्ञे रौक्मिणेयो महात्मा ॥३॥

अयं कपाटेन जघान पाण्ड्यं
तथा कलिङ्गान् दन्तकूरे ममर्द।
अनेन दग्धा वर्षपूगान् विनाथा
वाराणसी नगरी संबभूव ॥४॥

अस्मै वराण्यददंस्तत्र देवा
दृष्ट्वा भीमं कर्मकृतं रणे तत्।
श्रमश्च ते युध्यमानस्य न स्या—
दाकाशे चाप्सु च ते क्रमः स्यात् ॥५॥

शस्त्राणि गात्रे न च ते क्रमेर—
त्रित्येव कृष्णश्च ततः कृतार्थः।
एवंरुपे वासुदेवेऽप्रमेये
महाबले गुणसम्पत् सदैव ॥६॥
तमसह्यं विष्णुमनन्तवीर्य—
माशंसते धार्तराष्ट्रो विजेतुम् ।
सदा ह्येनं तर्कयते दुरात्मा
तच्चाप्ययं सहतेऽस्मान् समीक्ष्य ॥७॥

(श्री मन्महाभारत–उद्योगपर्व ४८ तमाध्यायतः)

४—महावीरः अर्जुनः

यह अवतरण 'महाभारत' से लिया गया है। इसमें पाण्डववीर अर्जुन का चरित्र चित्रित है।

(सञ्जयः कौरवसभां संबोधयन्)

दुर्योधनो वाचमिमां श्रृणोतु
यदब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानः ।
युधिष्ठिरस्यानुमते महात्मा
धनञ्जयः श्रृण्वतः केशवस्य ॥१॥

यदा ज्येष्ठः पाण्डवः संशितात्मा
क्रोधं यत्तं वर्षपूगान् सुघोरम् ।
अवस्रष्टा कुरुषूद्वृत्तचेता–
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥२॥

यदा द्रष्टा भीमसेनं रथस्थं
गदाहस्तं क्रोधविषं वमन्तम् ।
अमर्षणं पाण्डवं भीमवेगं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥३॥

शिशून् कृतास्तानशिशुप्रकाशान्
यदा द्रष्टा कौरवः पञ्चशूरान् ।
त्यक्त्वा प्राणान् कौरवानाद्रवन्त–
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥४॥

यदाभिमन्युः परवीरघाती
शरैः परान् मेघ इवाभिवर्षन् ।
विगाहिता कृष्णसमः कृतास्त्र–
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥५॥

यदा रथं हेममणिप्रकाशं
श्वेताश्वयुक्तं वानरकेतुमुग्रम् ।
द्रष्टा ममाप्यास्थितं केशवेन
तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः ॥६॥

यदा विपाठा मद्भुजविप्रयुक्ता
द्विजाः फलानीव महीरुहाग्रात् ।
प्रचेतार उत्तमाङ्गानि यूनां
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥७॥

सर्वा दिशः सम्पतता रथेन
रजोध्वस्तं गाण्डिवेन प्रकृत्तम् ।
यदा द्रष्टा स्वबलं संप्रमूढं
तदा पश्चात् तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥८॥

उद्वर्त्तयन् दस्युसंघान् समेतान्
प्रवर्तयन् युगमन्यद्युगान्ते ।
यदा धक्ष्याम्यग्निवत् कौरवेयां-
स्तदा तप्ता धृतराष्ट्रः सपुत्रः ॥९॥

(श्रीमन्महाभारत--उद्योगपर्व ४८ तमाध्यायतः)

५ महाकविः कालिदासः

यह संदर्भ 'भोजप्रबन्ध' से उद्धृत है। इससे यह स्पष्ट पता चलता है कि महाकवि कालिदास कितने लोकप्रिय थे।

ततः कदाचिद् द्वारपालकः प्रणम्य भोजं प्राह—'राजन् ! द्रविडदेशात् कोऽपि लक्ष्मीधरनामा कविर्द्वारमध्यास्ते' इति। राजा 'प्रवेशय' इत्याह। प्रविष्टमिव सूर्यमिव विभ्राजमानं चिरादप्यविदितवृत्तान्तं प्रेक्ष्य राजा विचारयामास आह च—

'आकारमात्रविज्ञान—
सम्पादितमनोरथाः।
धन्यास्ते ये न श‍ृण्वन्ति
दीनाः क्वाप्यर्थिनां गिरः॥'

स चागत्य तत्र राजानं 'स्वस्ति' इत्युक्त्वा तदाज्ञयोपविष्टः प्राह—'देव! इयं ते पण्डितमण्डिता सभा। त्वं च साक्षाद् विष्णुरसि। ततः किं नाम पाण्डित्यं तथापि किञ्चिद्वच्मि—

भोजप्रतापं तु विधाय धात्रा
शेषैर्निरस्तैः परमाणुभिः किम्।
हरेः करेऽभूत् पविरम्बरे च
भानुः पयोधेरुदरे कृशानुः॥

इति। ततस्तेन परिषच्चमत्कृता। राजा च तस्य प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ। पुनः कविराह 'देव ! मया सकुटुम्बेनात्र निवासाशया समागतम्।

'क्षमी दाता गुणग्राही
स्वामी पुण्येन लभ्यते।
अनुकूलः शुचिर्दक्षः
कविर्विद्वान् सुदुर्लभः॥'

इति। ततो राजा मुख्यामात्यं प्राह—'अस्मै गृहं दीयताम्' इति। ततो निखिलमपि नगरं विलोक्य कमपि मूर्खममात्यो नापश्यत्, यं निरस्य विदुषे

गृहं दीयते। तत्र सर्वत्र भ्रमन् कस्यचित् कुविन्दस्य गृहं वीक्ष्य कुविन्दं प्राह—'कुविन्द ! गृहान्निःसर। तव गृहं विद्वानेष्यती'ति। ततः कुविन्दो राजभवनमासाद्य राजानं प्रणम्य प्राह—'देव ! भवदमात्यो मां मूर्खं कृत्वा गृहान्निःसारयति, त्वं तु पश्य—मूर्खः पण्डितो वेति—

'काव्यं करोमि नहि चारुतरं करोमि
यत्नात् करोमि यदि चारुतरं करोमि।
भूपालमौलिमणिमण्डितपादपीठ !
हे साहसाङ्क ! कवयामि वयामि यामि॥'

ततो राजा त्वङ्कारवादेन वदन्तं कुविन्दं प्राह—'ललिता ते पदपंक्तिः, कवितामाधुर्यं च शोभनम्, परन्तु कवित्वं विचार्य वक्तव्यम्' इति। ततः कुपितः कुविन्दः प्राह—'देव ! अत्रोत्तरं भाति किन्तु न वदामि। राजधर्मः पृथग् विद्वद्धर्मात्' इति। राजा प्राह—'अस्ति चेदुत्तरं ब्रूहि' इति। कुविन्दः प्राह—'देव! कालिदासादृतेऽन्यं कविं न मन्ये। कोऽस्ति ते सभायां कालिदासादृते कवितातत्त्वविद् विद्वान्।'

(भोजप्रबन्ध)

तृतीये खण्डे

पुरुषार्थनिरूपणात्मके

१—चत्वारः पुरुषार्थाः

ार्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता म्भ हैं। 'महाभारत' से उद्धृत इन सूक्तियों में इनका सुगम विवेचन है।

क—धर्मः

आरम्भो न्याययुक्तो यः
स हि धर्म इति स्मृतः।
अनाचारस्त्वधर्मेति
एतच्छिष्टानुशासनम् ॥१॥

अक्रुद्ध्यन्तोऽनुसूयन्तो
निरहंकारमत्सराः।
ऋजवः शमसम्पन्नाः
शिष्टाचारा भवन्ति ते ॥२॥

वेदोक्तः परमो धर्मो
धर्मशास्त्रेषु चापरः।
शिष्टाचारश्च शिष्टानां
त्रिविधं धर्मलक्षणम् ॥३॥

त्रीण्येव तु पदान्याहुः
सतां व्रतमनुत्तमम्।
न चैव द्रुह्येत् दद्याच्च
सत्यं चैव सदा वदेत् ॥४॥

सर्वत्र च दयावन्तः
सन्तः करुणवेदिनः।
गच्छन्तीह सुसंतुष्टा
धर्मपन्थानमुत्तमम् ॥५॥

(श्रीमन्महाभारत—वनपर्व २०७ तमोध्यायतः)

ख अर्थ

अर्थाद्धर्मश्च कामश्च
स्वर्गश्चैव नराधिप ।
प्राणयात्रापि लोकस्य
विना ह्यर्थं न सिद्ध्यति ॥१॥
धनात् कुलं प्रभवति
धनाद् धर्मः प्रवर्धते ।
नाधनस्यास्त्ययं लोको
न परः पुरुषोत्तम ॥२॥
नाधनो धर्मकृत्यानि
यथावदनुतिष्ठति ।
धनाद्धि धर्मः स्रवति
शैलादभि नदी यथा ॥३॥
यः कृशार्थः कृशगवः
कृशभृत्यः कृशातिथिः ।
स वै राजन् कृशो नाम
न शरीरकृशः कृशः ॥४॥
(महाभारतात् शान्तिपर्वणः राजधर्मानुशासनपर्वण अष्टमाध्यायात् ।)

ग—कामः

इन्द्रियाणां च पञ्चानां
मनसो हृदयस्य च ।
विषये वर्तमानानां
या प्रीतिरुपजायते ॥१॥
स काम इति मे बुद्धिः
कर्मणां फलमुत्तमम् ।
एवमेव पृथग् दृष्ट्वा
धर्मार्थौ काममेव च ॥२॥
न धर्मपर एव स्या—
न्न चार्थपरमो नरः ।

न कामपरमो वा स्यात्
सर्वान् सेवेत सर्वदा ॥३॥
धर्मं चार्थं च कामं च
यथावद् वदतां वर ।
विभज्य काले कालज्ञः
सर्वान् सेवेत पण्डितः ॥४॥
(श्रीमन्महाभारतः वनपर्व—३३ तमाध्यायतः)

घ—मोक्षः

क्षुत्पिपासादयो भावा
जिता यस्येह देहिनः ।
क्रोधो लोभस्तथा मोहः
सत्त्ववान् मुक्त एव सः ॥१॥
संभवं च विनाशं च
भूतानां चेष्टितं तथा ।
यस्तत्त्वतो विजानाति
लोकेऽस्मिन् मुक्त एव सः ॥२॥
मृत्युनाऽभ्याहतं लोकं
व्याधिभिश्चोपपीडितं ।
अवृत्तिकर्शितं चैव
यः पश्यति स मुच्यते ॥३॥
पर्यङ्कशय्या भूमिश्च
समाने यस्य देहिनः ।
शालयश्च कदन्नं च
यस्य स्यान्मुक्त एव सः ॥४॥
अपत्यानां च वैगुण्यं
जनं विगुणमेव च ।
पश्यन् भूयिष्ठशो लोके
को मोक्षं नाभिपूजयेत् ॥५॥
(शान्तिपर्व—मोक्षधर्मपर्व—२८८ तमाध्यायात्)

२—विदुरस्य वचनामृतम्

महाभारत के आदर्श चरित्रों में महात्मा विदुर के चरित्र का एक अपना ही स्थान है। इस उद्धरण से महात्मा विदुर की कुछ शिक्षाओं पर प्रकाश पड़ता है।

न हृष्यत्यात्मसंमाने
नावमानेन तप्यते ।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो
यः स पण्डित उच्यते ॥१॥

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य
प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असंभिन्नार्यमर्यादः
पण्डिताख्यां लभेत सः ॥२॥

अनाहूतः प्रविशति
अपृष्टो वहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति
मूढचेता नराधमः ॥३॥

परं क्षिपति दोषेण
वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः
स च मूढतमो नरः ॥४॥

एकं हन्यान्न वा हन्या—
दिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा
हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥५॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत
एकश्चार्थान् न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं
नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥६॥

क्षमा वशीकृतिर्लोके
क्षमया किं न साध्यते ।

शान्तिखड्गः करे यस्य
किं करिष्यति दुर्जनः ॥७॥
द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ
शरीरपरिशोषिणौ ।
यश्चाधनः कामयते
यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥८॥
न्यायागतस्य द्रव्यस्य
बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च
पात्रे चाऽप्रतिपादनम् ॥९॥
भक्तं च भजमानं च
तवास्मीति च वादिनम् ।
त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान्
विषमेऽपि न संत्यजेत् ॥१०॥
षड् दोषा पुरुषेणेह
हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध
आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥११॥
षडेव तु गुणाः पुंसा
न हातव्याः कदाचन ।
सत्यं दानमनालस्य—
मनसूया क्षमा धृतिः ॥१२॥
आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः
सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः ।
स्वप्रत्ययावृत्तिरभीतवासः
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥१३॥
न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं
न दर्पमारोहति नास्तमेति ।

न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥१४॥
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं
नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं
स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥१५॥

(श्री मन्महाभारतः उद्योगपर्व-प्रजागरपर्व-३४ तमाध्यायात्)

३—भीष्मोपदेशः

महाभारत के इस अवतरण में भीष्म का 'उपदेश' है जिसमें माता, पिता और गुरु के प्रति मनुष्य के कर्त्तव्य का निर्देश है।

मातापित्रोर्गुरूणां च
पूजा बहुमता मम।
इह युक्तो नरो लोकान्
यशश्च महदश्नुते ॥१॥
एत एव त्रयो लोका
एत एवाश्रमास्त्रयः।
एत एव त्रयो वेदा
एत एव त्रयोऽग्नयः ॥२॥
सर्वे तस्यादृता लोका
यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते
सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥३॥
न चायं न परो लोक—
स्तस्य चैव परंतप।
अमानिता नित्यमेव
यस्यैते गुरवस्त्रयः ॥४॥

उपाध्यायं पितरं मातरं च
येऽभिद्रुह्यन्ते मनसा कर्मणा वा।
तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं
तस्मान्नान्यः पापकृदस्ति लोके ॥५॥
(श्रीमन्महाभारत-शान्तिपर्व-राजधर्मानुशासनपर्व-१०८ तमाध्यायतः)

४—भर्तृहरिसूक्तिसुधा

भर्तृहरि की सूक्तियां संस्कृत साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। नीति के सम्ब- धो में जो कुछ कहा गया है उसमें उपदेश अधिक है, कविता कम। भर्तृहरि ी की यही विशेषता है कि उनके पढ़ने से नीति के ज्ञान के साथ साथ कविता ग्रानन्द प्राप्त होता है। निम्नलिखित श्लोकों में बड़े सीधे-सादे ढंग से जीव ों पर विचार-विमर्श है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥१॥
क्षान्तिश्चेत् कवचेन किं, किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद्देहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं, यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः, किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि
व्रीडा चेत् किमु भूषणैः, सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ॥२॥
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरं
त्वसन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥३॥
कुसुमस्तवकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनाम्।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥४॥
ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमः
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजिता
सर्वेषामपि ——————— शीलं परं भूषणम् ॥५॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने कान्ताजने धृष्टता
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥६॥

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा—
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥७॥

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेः
न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने-
र्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥८॥

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां
परोपकारेण न चन्दनेन ॥९॥

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहां
पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम् ।
मृदुस्पर्शा शय्या सुललितलता पल्लवमयी
सहन्ते संतापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणाः ॥१०॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥११॥

५—पञ्चतन्त्रसुभाषितम्

बलोपपन्नोऽपि हि बुद्धिमान्नरः
परं नयेन्न स्वयमेव वैरिताम् ।
भिषक् ममास्तीति विचिन्त्य भक्षयेत्
अकारणात् को हि विचक्षणो विषम् ॥१॥

× × ×

अनारम्भो हि कार्याणां
प्रथमं बुद्धिलक्षणम् ।
प्रारब्धस्यान्तगमनं
द्वितीयं बुद्धिलक्षणम् ॥२॥

× × ×

प्रतिदिवसं याति लयं
वसन्तवाताहतेव शिशिरश्रीः ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामपि
कुटुम्बभरचिन्तया सततम् ॥३॥

× × ×

दुरधिगमः परभागो
यावत् पुरुषेण साहसं न कृतम् ।
जयति तुलामधिरूढो
भास्वानिह जलदपटलानि ॥४॥

× × ×

यः सततं परिपृच्छति
शृणोति सन्धारयत्यनिशम् ।
तस्य दिवाकरकिरणै—
र्नलिनीव विवर्द्धते बुद्धिः ॥५॥

× × ×

दर्शिते भयेऽपि धातरि
धैर्यध्वंसो भवेन्न धीराणाम् ।

शोषितसरसि निदाघ
नितरामेवोद्धतः सिन्धुः ॥७॥

× × ×

आदौ न वा प्रणयिनां प्रणयो विधेयः
दत्तोऽथ वा प्रतिदिनं परिपोषणीयः ।
उत्क्षिप्य यत् क्षिपति तत् प्रकरोति लज्जां
भूमौ स्थितस्य पतनाद् भयमेव नास्ति ॥८॥

× × ×

न गोप्रदानं न महीप्रदानं
न चान्नदानं हि तथा प्रधानम् ।
यथा वदन्तीह बुधाः प्रधानं
सर्वप्रदानेष्वभयप्रदानम् ॥९॥

× × ×

हस्ती स्थूलतरः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशः
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ।
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरिः
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥१०॥

चतुर्थ खण्ड

रसभावात्मक

१—शृङ्गारलहरी

महर्षि वाल्मीकि के 'रामायण' से उद्धृत इन श्लोकों में 'प्रेम' और उसमें 'आशा और निराशा' का बड़ा सुन्दर प्रकाशन है।

संयोगः

सा मामनादाय वनं
न त्वं प्रस्थितुमर्हसि ।
तपो वा यदि वारण्यं
स्वर्गो वा स्यात्त्वया सह ॥१॥

न च मे भविता तत्र
कश्चित् पथि परिश्रमः ।
पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या
विहारशयनेष्विव ॥२॥

कुशकाशशरेषीका
ये च कण्टकिनो द्रुमाः ।
तूलाजिनसमस्पर्शा
मार्गे मम सह त्वया ॥३॥

महावातसमुद्भूतं
यन्मामवकरिष्यति ।
रजो रमण तन्मन्ये
परार्ध्यमिव चन्दनम् ॥४॥

पत्रं मूलं फलं यत्तु
स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
दास्यसे स्वयमाहृत्य
तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥५॥

(श्रीमद्वाल्मीकिरामायण-अयोध्याकाण्ड-त्रिंशसर्गतः)

विप्रलम्भः

पद्मपत्रविशालाक्षीं
सततं प्रियपङ्कजाम् ।
अपश्यतो मे वैदेहीं
जीवितं नाभिरोचते ॥१॥

यानि स्म रमणीयानि
तया सह भवन्ति मे ।
तान्येवारमणीयानि
जायन्ते मे तया विना ॥२॥

पद्मकोशपलाशानि
द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते ।
सीताया नेत्रकोशाभ्यां
सदृशानीति लक्ष्मण ॥३॥

पद्मकेसरसंसृष्टो
वृक्षान्तरविनिःसृतः ।
निःश्वास इव सीताया
वाति वायुर्मनोहरः ॥४॥

अमी हि विविधैः पुष्पै—
स्तरवो विविधच्छदाः ।
काननेऽस्मिन् विना कान्तां
चिन्तामुत्पादयन्ति मे ॥५॥

(श्रीमद्वाल्मीकिरामायण-किष्किन्धाकाण्ड-प्रथमसर्गतः)

२—हास्यलहरी

यह हास्यमय संवाद 'प्रसन्नराघव' नाटक से उद्धृत है ।

कुब्जक-वामनक-संवादः

(ततः प्रविशति वामनकः)

वामनकः—(आत्मानं विलोक्य सविस्मयम्) अहो अङ्गानां मे तुङ्गत्वम् ।
अपि नामेदृशैरङ्गैरत्र ——— मया द्वारशिखरं भज्यते
तत्कुब्जो भूत्वा

(प्रविश्य)

कुब्जक :—वयस्य वामनक ! इदानीं सकलगुणसंयुक्तोऽसि त्वम् ।

वामनकः—कथमिव ?

कुब्जक :—प्रथममेव वामन इदानीं पुनः कुब्जत्वं प्राप्तः ।

वामनकः—(सक्रोधम्) अये मूर्ख ! कथमात्मनः कुब्जत्वं परस्मिन्नारोपयसि । ननु त्वमेव कुब्जकः । मया पुनर्द्वारशिखरभङ्गशङ्कितेनात्मनि कुब्जत्वमारोपितम् ।

कुब्जकः —(विहस्य) कथं वितस्तिमात्रेण तवाङ्गेन द्वारशिखरं भंक्ष्यते ? अरे अलीकवाचाल ! केन तव कथितमहं कुब्जक इति ।

वामनकः—नन्वनेनैव दृप्तवृषभककुदसदृशेन पृष्ठस्थितेन मांसस्तवकेनोद्वाहितेन ।

कुब्जकः—(विहस्य) अये मतिशून्य ! कथमयं मांसस्तवकोऽपि पुनः सौभाग्यलक्ष्म्या उपधानगेन्दुकः ।

वामनकः—(सशङ्कम्) अरे, शनैर्जल्प । अस्मादृशानामन्तःपुरचारिणा सौभाग्यवृत्तान्तमाकर्ण्य भर्ता कोपिष्यति ।

कुब्जकः —अलं भीरुत्वेन । इदानीं ध्यानगृहे वर्त्तते भर्ता ।

वामनकः—न खलु न खलु । अद्य किल कस्यापि प्राघूर्णकस्य महर्षेरागमनं परिपालयन् बाह्यमण्डपे वर्तते ।

कुब्जकः —हा हताः स्म ।

वामनकः—किमिति ।

कुब्जकः —ननु प्रथममेवैकेन महर्षिणा याज्ञवल्क्येनोपदिष्टोऽयं राजा अक्षिमीलनै रात्रीर्गमयति इदानीं पुनरनेनोपदिष्टोऽन्तःपुरमेव परिहरिष्यति । ततः किमयमस्माभिः क्षपणक इव कर्पटपेटकैः करिष्यति ।

(प्रसन्नराघवस्य तृतीयाङ्कत)

३—करुणलहरी

महाकवि कालिदास-रचित रघुवंश के 'अजविलाप' नामक सर्ग का यह उद्धरण है। इसमें 'काव्य में शोक' क्या है ? यह स्पष्ट झलकता है।

कुसुमान्यपि गात्रसङ्गमात्
प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं
किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः ॥१॥
स्रगियं यदि जीवितापहा
हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवे—
दमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥२॥
अथवा मम भाग्यविप्लवा—
दशनिः कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः
क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥३॥
मनसापि न विप्रियं मया
कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं
त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः ॥४॥

(रघुवंश—८ मः अजविलापसर्गतः)

४— क्रोधोऽपि काव्ये रसः

रौद्रः

'महाभारत' का यह उद्धरण महारथी कर्ण के 'क्रोध' का बड़ा सुन्दर शब्दमय चित्रण है।

शल्योग्रधन्वानमहं वरिष्ठं
तरस्विनं भीममसह्यवीर्यम् ।

सत्यप्रतिज्ञं युधि पाण्डवेयं
धनञ्जयं मृत्युमुखं नयिष्ये ॥१॥
क्रोधप्रदीप्तं ज्वलितं महान्तं
कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि भल्लैः ।
प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं
प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम् ॥२॥

तस्याहमद्यातिरथस्य कायात्—
छिरो हरिष्यामि शितैः पृषत्कैः ।
योत्स्याम्येनं शल्य धनञ्जयं वै
मृत्युं पुरस्कृत्य रणे जयं वा ॥३॥
मय्यार्जवे जिह्ममतिर्हतस्त्वं
मित्रद्रोही साप्तपदं हि मैत्रम् ।
कालस्त्वयं प्रत्युपयाति दारुणो
दुर्योधनो युद्धमुपागमद् यत् ॥४॥

(श्रीमन्महाभारत—कर्णपर्व—४२ तमाध्यायतः ।)

५—वीरलहरी

यह संदर्भ 'महाभारत' से लिया गया है। इसमें पाण्डववीर अर्जुन के अदम्य विजयोत्साह का बड़ा विशद वर्णन है।

त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण
त्रीन् लोकान् वै समागतान् ।
प्रापयेयं परं लोकं
विभु कर्णं महाहवे ॥१॥
अयं खलु स संग्रामो
यत्र कर्णं मया हतम् ।
कथयिष्यन्ति भूतानि
यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥२॥

अद्य राज्यात् सुखाच्चैव
श्रियो राष्ट्रात् तथा पुरात् ।
पुत्रेभ्यश्च महाबाहो
धृतराष्ट्रो विमोक्ष्यति ॥३॥

अद्य दृष्ट्वा मया कर्ण
शरैर्विशकलीकृतम् ।
स्मरतां तव वाक्यानि
शमं प्रति जनेश्वरः ॥४॥

हन्ताहं पाण्डवान् सर्वान्
सपुत्रानिति योऽब्रवीत् ।
तंमद्य कर्ण हन्तास्मि
मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥५॥

धनुर्वेदे मत्समो नास्ति लोके
पराक्रमे वा मम कोऽस्ति तुल्यः ।
को वाऽप्यन्यो मत्समोऽस्ति क्षमावां—
स्तथा क्रोधे सदृशोऽन्यो न मेऽस्ति ॥६॥

(श्रीमन्महाभारत—कर्णपर्व—७४ तमाध्यायतः)

६—भयानकः

'महाभारत' के इस संदर्भ में कौरव-सेनापति द्रोण के पराक्रम से पाण्डव-सेना की भय-विह्वलता का चित्रण खिंचा है ।

मुहूर्तमिव तद् युद्धमासीन्
मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्
निर्मर्यादमवर्तत ॥१॥

समुच्छ्रितपताकानां
गजाना परमद्विपै

क्षणेन तुमुलो घोरः
संग्रामः समपद्यत् ॥२॥
तेषां संसक्तगात्राणां
कर्षतामितरेतरम् ।
दन्तसंघातसंघर्षात्
सधूमोऽग्निरजायत ॥३॥
तेषामाहन्यमानानां
बाणतोमरऋष्टिभिः ।
वारणानां रवो जज्ञे
मेघानामिव संप्लवे ॥४॥
हतान् परिवहन्तश्च
पतितान् पतितायुधान् ।
दिशो जग्मुर्महानागाः
केचिदेकचरा इव ॥५॥
रथाश्च रथिभिर्हीना
निर्मनुष्याश्च वाजिनः ।
हतारोहाश्च मातङ्गा
दिशो जग्मुर्भयातुराः ॥६॥
वर्तमाने तथा युद्धे
घोररूपे भयङ्करे ।
मोहयित्वा परान् द्रोणो
युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥७॥

(श्रीमन्महाभारत—द्रोणपर्व-२० तमाध्यायतः)

७— वीभत्सः

'महाभारत' से उद्धृत इन श्लोकों में कुरु-पाण्डव-संग्राम के बीभत्स दृश्य का एक ोचक वर्णन है ।

ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः
शिवारुतैः संधिरवर्ततादभुतः ।

कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे
विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम् ॥१॥
अतीव हृष्टाः श्वश्रृगालवायसा
बकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः ।
वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः
पिशाचसंघाश्च सुदारुणा रणे ॥२॥
त्वचो विनिर्भिद्य पिबन् वसामसृक्
तथैव मज्जा पिशितानि चाश्नुवन् ।
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च
प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः ॥३॥
शरीरसंघातवहा ह्यसृग्जला
रथोडुपा कुञ्जरशैलसङ्कटा ।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा
प्रविद्धनानविधशस्त्रमालिनी ॥४॥
भयावहा वैतरणीव दुस्तरा
प्रवर्तिता योधवैरस्तदा नदी ।
उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं
भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ॥५॥

(श्रीमन्महाभारत—द्रोणपर्व—५ तमाध्यायतः)

८— विस्मयेऽपि रसः कोऽपि

अद्भुतः

वाल्मीकि - रामायण के इन श्लोकों में स्वर्णमृग (मारीच) के दर्शन से आश्चर्य-चकित राम के मनोभावों का प्रकाशन है ।

न वने नन्दनोद्देशे न चैत्ररथसंश्रये ।
कुतः पृथिव्यां सौमित्रे ! योऽस्य कश्चित्समो मृगः ॥१॥

प्रतिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजय : ।
शोभन्ते मृगमाश्रित्य चित्राः कनकविन्दुभिः ॥२॥

पश्यास्य जृम्भमाणस्य
दीप्तामग्निशिखोपमाम् ।
जिह्वां मुखान्निःसरन्तीं
मेघादिव शतह्रदाम् ॥३॥

मसारगल्वर्कमुखः
शङ्खमुक्तानिभोदरः ।
कस्य नामानिरूप्योऽसौ
न मनो लोभयेन्मृगः ॥४॥

कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा
जाम्बूनदमयप्रभम् ।
नानारत्नमयं दिव्यं
न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥५॥

(श्रीमद्वाल्मीकिरामायण—अरण्यकाण्ड—४३ सर्गतः)

६— शान्तः

किसी न किसी दिन, सबके लिये वह समय आता है जब कि मन में संसार से विराग उत्पन्न हो जाता है और सब कुछ होते हुये भी कुछ भी अच्छा नहीं लगता। 'महाभारत' के इस उद्धरण में युधिष्ठिर की ऐसी ही मनःस्थिति झलक रही है।

(युधिष्ठिरः—)

यद्भैक्ष्यमाचरिष्याम
वृष्ण्यन्धकपुरे वयम् ।
ज्ञातीन् निष्पुरुषान् कृत्वा
नेमां प्राप्स्याम दुर्गतिम् ॥१॥

अमित्रा नः समृद्धार्था
वृत्तार्था कुरवः किल ।

आत्मानमात्मना हत्वा
किं धर्मफलमाप्नुमः ॥२॥
धिगस्तु क्षात्रमाचारं
धिगस्तु बलपौरुषम् ।
धिगस्त्वमर्षं येनेमा–
मापदं गमिता वयम् ॥३॥
न पृथिव्या सकलया
न सुवर्णस्य राशिभिः ।
न गवाश्वेन सर्वेण
ते त्याज्या य इमे हताः ॥४॥
न सकामा वयं ते च
न चास्माभिर्न तैर्जितम् ।
न तैर्भुक्तेयमवनि-
र्न नार्यो गीतवादितम् ॥५॥
हत्वा नो विगतो मन्युः
शोको मां रुन्धयत्ययम् ।
धनञ्जय कृतं पापं
कल्याणेनोपहन्यते ॥६॥
स धनञ्जय निर्द्वन्द्वो
मुनिर्ज्ञानसमन्वितः
वनमामन्त्र्य वः सर्वान्
गमिष्यामि परन्तप ॥७॥

१०—वत्सलः

'बालक के प्रति प्रेम'—यह कविता का एक बड़ा सुन्दर विषय है। इस पर संस्कृत-काव्य-साहित्य में बहुत अच्छा लिखा गया है। ये श्लोक कालिदास-कृत 'रघुवंश' से उद्धृत हैं जिनमें 'वात्सल्य भाव' का मार्मिक प्रकाशन है।

निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा
नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम्।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद्
गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि ॥१॥

रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं
बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम्।
विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः
परस्परस्योपरि पर्यचीयत ॥२॥

तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः
सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वयि।
उपान्तसंमीलितलोचनो नृपः
चिरात् सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ ॥३॥

(कालिदासस्य रघुवंशतः ३ सर्गतः)